अध्याय – 11

जैविक खाद एवं जैव उर्वरक (Organic Manures and Bio fertilizers)

प्रस्तावना (Introduction)–

देश में विगत कुछ वर्षो से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध व अनियंत्रित प्रयोग किया जाता रहा है जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा में उपलब्ध लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में भारी कमी हुई है। फलतः मृदा की उत्पादन शक्ति क्षीण हुई है। अतएव मृदा को स्वस्थ्य बनाये रखने, लक्षित उत्पादन प्राप्त करने के लिए, उत्पादन लागत कम करने हेतु व पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है, कि रासायनिक उर्वरकों जैसी कीमती निवेश के प्रयोग को एक हद तक कम करके जैविक खाद के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

जैविक खाद का तात्पर्य रासायनिक रूप से कार्बनिक पदार्थों से है, जो सड़ने गलने पर जीवांश पैदा करती है। इनमें वे सभी पोषक तत्व मौजूद रहते हैं जो कि पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं तथा मृदा को वे सभी तत्व पुनः मिल जाते हैं जो कि फसल अपनी बढ़वार के समय उससे लेते हैं। प्राकृतिक खाद या जैविक खाद और हरी खाद के इस्तेमाल से भूमि की संरचना में सुधार आयेगा और साथ ही रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभावों से बचा जा सकेगा। समन्वित पोषण आपूर्ति प्रणाली अपनाने के लिए यह जरूरी है कि जैविक खादों व अन्य उर्वरकों का सन्तुलित मात्रा में उचित समावेश किया जावे।

जैविक खाद (Organic Manures)–

जैविक खाद उस खाद को कहते है, जिसमें जीवों का अंश हो, ऐसी खाद को प्राकृतिक या कार्बनिक या जैविक खाद भी कहते हैं। जैविक खाद में मुख्यतः गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, खली की खाद, वर्मी कम्पोस्ट, नाडेप की खाद, इसके अलावा हड्डी की खाद, पोल्ट्रीखाद, मछली की खाद, मानव विष्टा की खाद आदि आती है।

जैविक खादों का वर्गीकरण (Classification of Organic Manures)–

जैविक /कार्बनिक खादों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता हैं–

(अ) स्थूल जैविक/कार्बनिक खादें (Bulky Organic Manures)– इनमें पोषक तत्वों की मात्रा कम होने के कारण इनका प्रयोग अधिक मात्रा में करना पड़ता है। जैसे– गोबर की खाद, कम्पोस्ट, मलमूत्र की खाद, सीरे की खाद, प्रेसमड आदि।

(ब) सान्द्रित जैविक/कार्बनिक खादें (Consentrated Organic Manures)– इनमें स्थूल या भारी कार्बनिक खादों की अपेक्षा पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है। अतः अपेक्षाकृत इनकी कम मात्रा प्रयोग की जाती है। जैसे–खलियाँ (Cakes)।

(स) प्राणिजात खादें (Manures of animal origin)– जैसे सुखाया हुआ खून, ऊन, हड्डी की खाद, मछली की खाद।

जैविक खादों का मृदा में महत्त्व एवं प्रभाव –

जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट खाद तथा वर्मी कम्पोस्ट आदि मृदा उर्वरता बनाये रखने, उत्पादन का स्तर रखने एवं पौषक तत्वों का सही परिमाण प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। जैविक खाद का प्रभाव केवल एक फसल तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि उनका प्रभाव 2–3 वर्षो तक मृदा में रहता है। जैविक खाद के उपयोग से मृदा में जैविक कार्बन में भी सुधार आता है। पौधों को अपना जीवन पूर्ण करने के लिए 20 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जो केवल उर्वरकों के प्रयोग से पूर्ण नहीं की जा सकती है। आवश्यक मात्रा में जैविक खाद के प्रयोग से प्रमुख तत्वों के साथ–साथ गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति भी आसानी से हो जाती है।

जैविक खाद के उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक तीनों ही अवस्थाओं में सुधार होता है, इन खादों की उपयोगिता निम्नलिखित है–

(अ) मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव–

1. रेतीली हल्की मृदा सघन तथा दानेदार संरचना हो जाती है व भारी भूमि हल्की तथा भुरभुरी हो जाती है, परिणामतः भूमि की संरचना में सुधार होता है।
2. मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है।
3. मृदा में वायु संचार में वृद्धि होती है।
4. पानी व वायु द्वारा मृदा अपरदन कम हो जाता है, जिससे मृदा संरक्षण होता है।
5. मृदा ताप नियन्त्रण में रहता है।
6. पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है।
7. भूमि में जल अंतःस्पदन अच्छा हो जाता है।

(ब) मृदा के रासायनिक गुणों पर प्रभाव –

1 पौधों को सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के साथ–साथ हारमोन्स व एन्टीबायोटिक्स की भी प्राप्ति होती है जो विशेष लाभकारी होते हैं।

2 क्षारीय मृदा का पी.एच. मान कम हो जाता है।

3 मृदा की क्षारीयता तथा लवणीयता में सुधार होता है।

4 मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।

5 मृदा में पाये जाने वाले विषैले पदार्थों का प्रभाव कम हो जाता है।

6 जैविक खाद के उपयोग व अपघटन से मृदा में स्थिर तत्व विलेयशील होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं।

7 मृदा की उभय प्रतिरोधी क्षमता (Buffering capacity) तथा धनायन विनिमय क्षमता (Cation exchange capacity) में वृद्विहोती है।

(स) मृदा के जैविक गुणों पर प्रभाव –

1. मृदा में लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में वृद्विहोती है।
2. जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्विहोने के कारण पौधों को पोषक तत्व आसानी से प्राप्त होते रहते हैं।
3. जैविक खादें मृदा में सूक्ष्म जीवों के लिए भोजन व ऊर्जा प्रदान करती है जिससे सूक्ष्म जीवों द्वारा मृदा में होने वाली नाइट्रीकरण (Nitrification), अमोनीकरण (Amonification) तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) की क्रिया बढ़ जाती है।
4. मृदा में वायुमण्डल से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण तीव्र गति से होने लगता है।
5. जीवाणु जटिल पदार्थो को विच्छेदित कर आयनिक रूप में पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

(द) जैविक खाद एवं उर्वरकों में भेद (Difference between organic manures & fertilizers)–

जैविक / कार्बनिक खाद (Organic manures)	उर्वरक (Fertilizers)
1. ये पेड़ पौधों तथा जन्तुओं के भागों तथा अवशेष पदार्थों को सड़ाकर बनाये जाते हैं।	1. ये अनेक रासायनिक क्रियाओं द्वारा तत्वों अथवा खनि पदार्थों से कारखानों में तैयार की जाती है।
2. पौधों के सभी आवश्यक तत्व उपस्थित रहते हैं, परन्तु पोषक तत्वों की मात्रा सघन नहीं होती।	2. पोषक तत्वों की मात्रा काफी सघन होती है, परन्तु इनमें एक या दो आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं।
3. पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्यता धीरे–धीरे होती रहती है। इनका प्रभाव प्रायः 1–2 वर्ष तक मृदा में बना रहता है।	3. इनके पोषक तत्व पौधों को लगभग एक सप्ताह में ही प्राप्त होने लगते हैं और इनका अवशेष प्रभाव मृदा में अधिक समय तक नहीं रह पाता।
4. इन खादों को फसल की बुवाई से काफी पहले प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि इनके प्रयोग करने के काफी समय पश्चात्, जब ये सड़ जाते हैं तब पौधों को प्राप्त होते हैं।	4. सभी तत्व विलेय अवस्था में तथा शीघ्र पौधों को उपलब्ध होते हैं। अतः इनका प्रयोग फसल की बुवाई के समय अथवा खड़ी फसल में किया जाता है।
5. इनसे मृदा–जल धारण क्षमता बढ़ जाती है।	5. इनके प्रयोग से मृदा जल धारण क्षमता नहीं बढ़ती।
6. इनके प्रयोग से मृदा का वायु संचार सुधरता है।	6. उर्वरकों का मृदा वायु संचार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
7. सभी आवश्यक तत्व प्राप्त होने के कारण पौधों की सन्तुलित वृद्धि होती है।	7. इनके प्रयोग से पौधों की संतुलित वृद्धि नहीं होती, क्योंकि उर्वरकों से सभी तत्व पौधों को प्राप्त नहीं होते।

8.	इसके प्रयोग से कार्बन नाइट्रोजन अनुपात मृदा में सन्तुलित रहता है।	8.	यह अनुपात संतुलित नहीं रहता है।
9.	मृदा ताप पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।	9.	मृदा ताप पर प्रभाव नहीं पड़ता।
10.	इनके प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाने से उसके अपरदन में कमी हो जाती है।	10.	मृदा अपरदन (Erosion) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
11.	अत्यधिक मात्रा में भी प्रयोग करने से मृदा पर हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।	11.	अधिक मात्रा में प्रयोग करने से फसल एवं मृदा दोनों पर ही हानिकारक प्रभाव पड़ता है।
12.	खादों के प्रयोग से मृदा में उपस्थित अविलेय तत्व विलेय रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, क्योंकि कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से कार्बनिक अम्ल बनते हैं।	12.	इनमें ऐसा सम्भव नहीं है।
13.	इनके प्रयोग से फसलों की जल माँग घटती है।	13.	फसलों की जल माँग बढ़ती है।
14.	इनके प्रयोग से मृदा की प्रत्यारोधन क्षमता (Buffering Capacity) बढ़ जाती है।	14.	उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की प्रत्यारोधन क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गोबर की खाद (Farm Yard Manures)–

गोबर की खाद का प्रयोग हमारे देश में प्राचीन काल से हो रहा है। गोबर की खाद से तात्पर्य ऐसी खाद से है जिसमें घरेलू पशुओं (गाय, भैंस, बैल, भेड, बकरी, ऊँट आदि) के ठोस तथा द्रव मल–मूत्र से युक्त बिछावन (पुआल, भूसा, चारा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ आदि) को गड्डो में सड़ाकर तैयार किया जाता है।

गोबर की खाद के मुख्य घटक–

गोबर की खाद के तीन मुख्य घटक (अवयव) गोबर, मूत्र तथा बिछावन हैं–

1. गोबर– पशुओं के मल (गोबर) के ठोस पदार्थ में कई अघुलनशील व बिना पचे पदार्थ होते हैं। इसके अतरिक्त 0.3–0. 7 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.1–0.5 प्रतिशत फॉस्फोरस व 0.3–0.5 प्रतिशत पोटेशियम तथा कुछ गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं।

2. मूत्र – मूत्र का मुख्य अवयक यूरिया है, यह 2 प्रतिशत होता है। इसके अतरिक्त मूत्र में अनेक रासायनिक पदार्थ घुलनशील अवस्था में होते हैं। मूत्र में नाइट्रोजन 0.4–1.35 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.05–0.10 प्रतिशत व पोटेशियम 0.5–2.0 प्रतिशत होता है।

3. बिछावन – पशुओं के मूत्र को शोषित करने के लिए बिछावन का प्रयोग करते हैं, बिछावन में पौधे के लिए आवश्यक पोषक तत्व भी पाये जाते हैं। बिछावन से खाद के ढेर में वायु का संचार अच्छा होता है जिससे जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है व खाद सड़ने में मदद मिलती है।

गोबर की खाद में पोषक तत्व–

गोबर की खाद में सभी आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, केल्शियम, मैग्नीशियम, गन्धक, लोहा, ताँबा, जस्ता तथा मैग्नीज आदि पाये जाते हैं।

गोबर की खाद में मुख्य तत्वों की मात्रा –

नाइट्रोजन 0.5–10 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.25–0.5 प्रतिशत एवं पोटेशियम 0.5–1.0 प्रतिशत होता है। गोबर की खाद में उपस्थित तत्वों की मात्रा, पशुओं की किस्म, पशुओं की आयु, उनके भोजन, कार्य, बिछावन व खाद संग्रह करने की विधि पर निर्भर करती है।

गोबर की खाद तैयार करने की विधि :–

1. वर्तमान प्रचलित विधि– हमारे देश में गोबर की खाद तैयार करने की वर्तमान प्रचलित विधि दोषपूर्ण है। इससे प्राप्त खाद में पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है व खाद की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है। मिट्टी द्वारा सोखा गया मूत्र तथा बचा हुआ चारा ढेर के रूप में खुले गड्ढों में इकट्ठा कर लेते हैं और प्राकृतिक रूप से सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। अधिकांश गोबर को ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है।

2. संशोधित गड्ढा विधि– इस विधि से खाद बनाने के लिए एक पशु के लिए 1 मीटर गहरा 2 मीटर चौड़ा तथा 3 मीटर लम्बा गड्ढा एक वर्ष के लिए पर्याप्त रहता है। पशुओं की संख्या अधिक होने पर गड्ढो की गहराई, लम्बाई व चौड़ाई बढ़ाने की अपेक्षा उनकी संख्या बढ़ाना उचित रहता है। रेतीली भूमि में गड्ढे पक्के बनाने चाहिए जिससे पोषक तत्वों का ह्रास रिसकर न हो। चिकनी भूमि में कच्चे या पक्के दोनों प्रकार के गड्ढ़े बनाये जा सकते हैं। गड्ढे छायादार व ऊँचे स्थान पर बनाने चाहिए जिससे वर्षा का पानी गडढों में न भरे।

सर्वप्रथम गड्ढे के पेंदे में 10–20 से.मी. परत चारे या बिछावन की लगानी चाहिए इसके बाद गोबर व मूत्र की 75–100 से.मी. परत डालनी चाहिए। तीसरी परत पुनः बिछावन की 75–100 से.मी. मोटी डालें। इस क्रम में गड्ढे की भराई भूमि सतह से 50 से.मी. ऊचाई तक करें इसके बाद ढेर को समतल कर 10 से.मी. मिट्टी की परत से गड्ढे को बन्द कर देना चाहिए। गड्ढे में खाद 5–6 माह में सड़कर तैयार हो जाती है।

3. ट्रेंच (Trench) विधि– इस विधि में 60 मीटर लम्बाई, 1.5 मीटर चौडाई व 1.0 मीटर गहराई की ट्रेच (खाई) तैयार की जाती है इस विधि में ट्रेंच की लम्बाई व चौड़ाई बढ़ाई जा सकती है परन्तु गहराई नहीं बढ़ाते हैं।

इस विधि में बिछावन मूल–मूत्र आदि को गड्ढे के आधे भाग में भरते हैं जब गड्ढे का आधा भाग भरते–भरते भूतल से आधा मीटर ऊँचा हो जाता है तो उसे गोलाकर या डोम आकार का रूप देकर गोबर तथा मिट्टी के मिश्रण से लेप कर देते हैं। आधा भाग भर जाने के बाद गड्ढे के दूसरे भाग को भर कर इसी प्रकार लेप करते हैं।

इस विधि की विशेषता यह है कि जब तीन माह में दूसरा ढेर बनता है तब तक पहले ढेर की खाद सड़ कर प्रयोग के लिए तैयार हो जाती है इसी तरह एक ही गड्ढे से पूरे वर्ष सड़ी हुई खाद खेत में देने के लिए प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार तैयार की गई खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है।

सड़ी हुई गोबर की खाद की पहचान–

अच्छी सडी हुई गोबर की खाद का कोई भी घटक अलग से नहीं दिखाई देता है, खाद में किसी तरह की दुर्गन्ध नहीं आती है, खाद भुरभुरी तथा उसका रंग हल्का भूरा होता है।

गोबर के खाद की प्रयोग विधि–

साधारणतया सभी फसलों में 10–15 टन प्रति हैक्टर व सब्जियों में 20–25 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद की मात्रा प्रयोग में लेते हैं। बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करते हैं। खेत में खाद को समान रूप से बिखेर कर हल से जुताई करके मिट्टी में मिलाते हैं। खेत में खाद डालने के बाद ज्यादा समय तक खुले में नहीं छोड़ना चाहिए अन्यथा खाद से नाइट्रोजन का ह्रास होता है।

कम्पोस्ट (Compost)–

कम्पोस्टिंग एक जैव रासायनिक क्रिया है जिसमें वायवीय (aerobic) तथा अवायवीय (anaerobic) जीवाणु कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर बारीक खाद बनाते हैं यह पूर्ण सड़ा हुआ कार्बनिक पदार्थ ही कम्पोस्ट कहलाता है।

भारत में तैयार किया जाने वाला कम्पोस्ट इस प्रकार है –

1. फार्म अवशिष्टों से तैयार कम्पोस्ट – इसमें खरपतवार, फसल अवशेष, पशुओं का बचा हुआ चारा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ आदि काम में लिये जाते हैं।

2. शहर व कस्बों के अवशिष्ट से तैयार कम्पोस्ट – यह शहर का मल, कूडा–करकट व अन्य कार्बनिक कचरा आदि से तैयार किया जाता है।

कम्पोस्ट बनाने की विधियाँ–

1. इन्दौर विधि
2. बैंगलौर विधि
3. नाडेप विधि

इनमें नाडेप विधि अच्छी है जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है–

1. नाडेप कम्पोस्ट (Nadep compost)–

यह विधि महाराष्ट्र के कृषक 'नाडेप काका' द्वारा विकसित की गई। इस विधि में निम्न सामग्री काम में ली जाती है –

(अ) फार्म अवशेष, अपशिष्ट, कम्पोस्ट बनाने के लिए आवश्यक सामग्री–कपास व अरहर के डंठल, गन्ने की पत्तियाँ आदि करीब 1400–1500 कि.ग्रा.

(ब) पशुओं का गोबर 90–100 कि.ग्रा.

(स) सूखी छनी मृदा 1750 कि.ग्रा.

(द) पानी मौसम के अनुसार

इस विधि में पशुओं के गोबर का कम प्रयोग किया जाता है। इस विधि में वायवीय प्रक्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थो का विघटन होता है। कम्पोस्ट तैयार होने में 90–120 दिन का समय लगता है। इस विधि से तैयार कम्पोस्ट में 0.5–1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.5–0.9 प्रतिशत फॉस्फोरस व 1.2–1.4 प्रतिशत पौटेशियम पाया जाता है।

नाडेप कम्पोस्ट टैंक –

ईटें या पत्थर आदि से जमीन के ऊपर टेंक तैयार की जाती है। टेंक का आकार आयताकार जिसके अन्दर लम्बाई 10 फीट, चौड़ाई 6 फीट तथा ऊँचाई 3 फीट रखते हैं। सतह तक की दीवार 9 इंच मोटी होनी चाहिए। ईंटों की जुड़ाई मिट्टी से करते हैं सिर्फ टेंक की ऊपरी ईंटें सीमेन्ट से जोड़ते हैं जिससे टैंक के गिरने का डर न रहे। हवा के आवागमन के लिए टैंक की चारों दीवारों में 7 इंच चौड़े छेद छोड़ने चाहिए, ईंट की दो परत के बाद तीसरी परत को जोड़ते समय प्रत्येक ईंट की जुड़ाई के बाद 7 इंच का छेद छोड़कर जुड़ाई करते हैं इसी प्रकार तीसरी, छठी तथा नवीं परत में छेद रखते हैं, यह छिद्र एकान्तर में छोड़े जाते हैं। एक के ऊपर दूसरा छिद्र न आये यह ध्यान रखना आवश्यक

है। टैंक के अन्दर व बाहर की दीवारों और फर्श के टेंक भरने से पूर्व गोबर व मिट्टी के मिश्रण से भली प्रकार लीप देना चाहिए। टेंक सूखने के बाद ही प्रयोग में लाये।

टैंक भरने की विधि–

टेंक भरने से पूर्व गोबर के घोल का छिड़काव टेंक के नीचे तथा दीवारों के अन्दर कर लेना चाहिए। टेंक की भराई 48 घण्टो में पूर्ण कर लेनी चाहिए अन्यथा कम्पोस्ट बनने की प्रक्रिया में बाधा आती है।

प्रथम परत (वानस्पतिक पदार्थ)– पहली 6 इंच की परत फार्म के वानस्पतिक अवशेषों से भर देनी चाहिए जो करीब 100 कि.ग्रा. होते है।

दूसरी परत (गोबर का घोल) – गोबर या गोबर की लेही (slurry) (करीब 4–5 कि.ग्रा. गोबर की सम्पूर्ण सामग्री 125–150 लीटर पानी में घोल) का पहली परत पर एक सार छिड़काव करते हैं।

तीसरी परत (साफ सूखी छनी मिट्टी)– इस परत में 50–60 कि.ग्रा. (4–5 टोकरी) साफ सूखी छनी मिट्टी गोबर की परत पर एकसार बिछा देते हैं तथा इसके ऊपर पानी का छिड़काव कर गीला कर लेते हैं।

इस प्रकार के तीन क्रमों में टेंक में परत बनाते रहते हैं जब तक ढेर टेंक की दीवारों से 1.5 फीट ऊपर तक न आ जाये। साधारणतया 11–12 तहों में टेंक भर जाता है। टेंक के ऊपरी भाग को झोपड़ीनुमा आकार देते हैं। टेंक भरने के बाद ढक देते है तथा 3 इंच मोटी मिट्टी की परत (करीब 300–400 कि.ग्रा. मिट्टी) की सहायता से अच्छी तरह बन्द कर देते हैं। इस बात का ध्यान रखे कि टेंक के ढेर में दरार न पड़े क्योंकि दरारों से गैस निकलती रहती है, इसलिए इसके ऊपर पुनः लीपन करते रहें।

दूसरी भराई– 15–20 दिन बाद कूड़ा–करकट दब कर नीचे बैठ जाता है तथा टेंक करीब 8–9 इंच तक खाली हो जाता है तदुपान्त इसको उपरोक्त क्रमानुसार तीन परतों में भरकर गोबर व मिट्टी से लीप देना चाहिए। इस विधि से कम्पोस्ट तैयार होने में 3–4 माह का समय लगता है, कम्पोस्ट में 15–20 प्रतिशत नमी बनाये रखने के लिए गोबर व पानी के मिश्रण का छिडकाव करें जिससे खाद में आवश्यक पोषक तत्व संरक्षित रह सके। साधारणतया एक टेंक से 160–175 घन फीट कम्पोस्ट, जिसका वजन 3 टन के करीब होता है, प्राप्त होती है।

कम्पोस्ट प्रयोग विधि–

सामान्यतया फसलों में 10–15 टन प्रति हैक्टर व सब्जियों में 20–25 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट की मात्रा को बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत में डालकर हल चलाकर मिट्टी में भली–भॉति मिला लेना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट (Vermicompost)– वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा के भौतिक रासायनिक व जैविक गुणो में सुधार होता है जिससे मृदा की उत्पादकता में टिकाऊपन आता है।

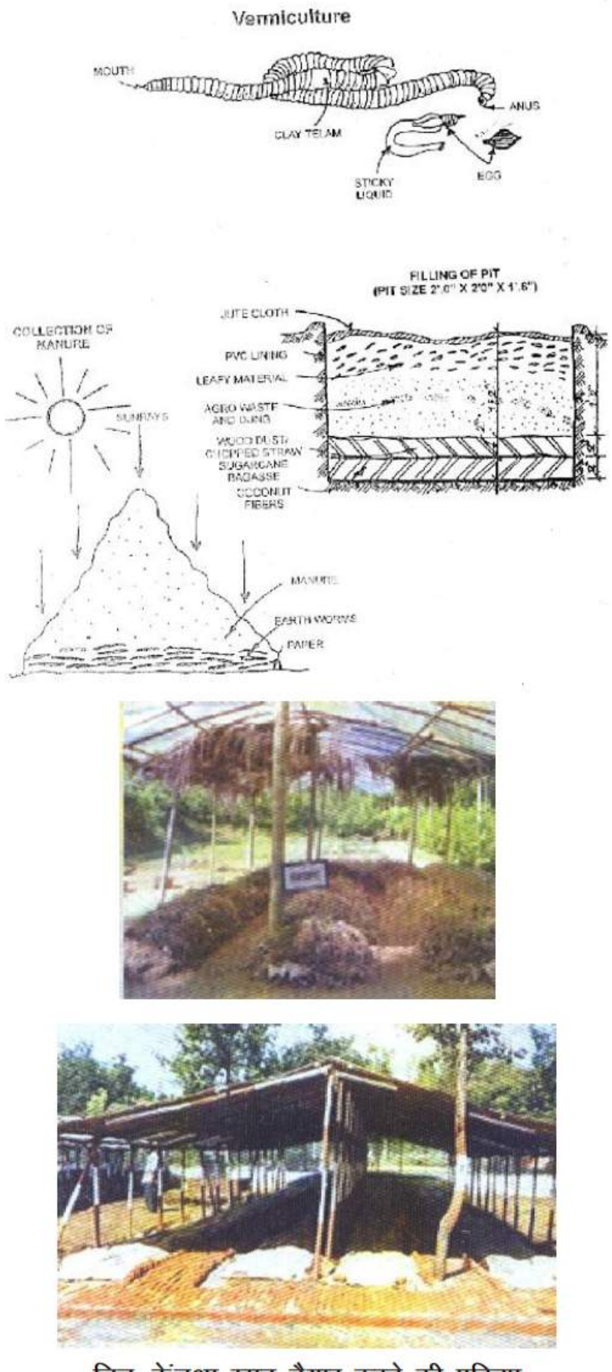

चित्र–केंचुआ खाद तैयार करने की प्रक्रिया

वर्मी टैक्नोलोजी के अन्तर्गत तीन तकनीक आती हैं– (i) वर्मीकल्चर, (ii) वर्मीकम्पोस्टिंग और (iii) वर्मीकंजरवेशन–

वर्मीकल्चर (Vermiculture)– वर्मीकल्चर, वह तकनीक है जिसके अन्तर्गत केंचुओं का प्रजनन व रख–रखाव किया जाता है, साधारण भाषा में केचुओं के संवर्धन को वर्मीकल्चर कहते हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग– केंचुओं द्वारा बेकार कार्बनिक पदार्थों से जैविक खाद बनाने की प्रक्रिया को वर्मीकम्पोस्टिंग कहते हैं। दूसरे शब्दों में वर्मी कम्पोस्टिंग वह विधि है जिसमें कूड़ा–कचरा व गोबर को केंचुओं व सूक्ष्म जीवों की सहायता से उपजाऊ खाद (वर्मीकास्ट) में बदला जाता है, जिसको वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं।

वर्मीकंजरवेशन– वह प्रक्रिया है, जिसमें केंचुओं को वर्मी कम्पोस्ट से अलग किया जाता है। केंचुओं के अपशिष्ट मल, उनके कोकून सभी प्रकार के लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व और विघटित जैविक पदार्थों का मिश्रण वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है।

वर्मीकास्ट (Vermicast)– केंचुए कार्बनिक पदार्थ को खाते है और यह कार्बनिक पदार्थ केंचुओं के पाचनतंत्र से होता हुआ जटिल जैव रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरता है और मिट्टी की महक वाली सूक्ष्म गोलिकाओं के रूप में बाहर निकलकर आता है। कोकून के साथ निकला यह पदार्थ और गैर पचा हुआ पदार्थ "वर्मीकास्ट" कहलाता है।

वर्मीकम्पोस्ट में गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक मात्रा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश होता है। वर्मीकम्पोस्ट में नाइट्रोजन 1.75–2.5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1.5–1.8 प्रतिशत तथा 1.0–1.5 प्रतिशत पोटेशियम की मात्रा पायी जाती है, वर्मीकम्पोस्ट में एक्टीनोंमाइसिटीज की मात्रा गोबर की खाद की तुलना में 8 गुना अधिक पायी जाती है। इसके एन्टीबायोटिक गुणो से फसलें कीट व व्याधियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी हो जाती है, इसके अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट में सूक्ष्म पोषक तत्व संतुलित मात्रा में तथा कई एन्जाइम व विटामिन भी पाये जाते हैं। उपरोक्त वर्णित पोषक तत्वों के परिमाण का संगठन प्रयुक्त सामग्री पर निर्भर करता है।

केंचुओ के प्रकार (Types of Earth Worm)–

प्रकृति में लगभग 2500–3000 केचुएँ की प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इनमें से 350 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती है जिनमें 293 प्रजातियों को कृषि में लाभकारी पाया गया है। मुख्यतः तीन प्रकार के केंचुए अधिक लाभकारी है–

1. एपिजिक– ये भूमि में एक मीटर की गहराई तक ही जाते हैं और कृषि अपशिष्टों को अधिक खाते हैं। वर्मीकम्पोस्ट

बनाने में इन्ही केचुओं का प्रयोग किया जाता है। इनकी कुछ प्रजातियाँ है पेरेनिप्स आर्वोशीकोली, फेरेटिमा इलोन्गेटा, आईसीनिया फोईटिडा आदि।

2. इन्डोजिक – ये केंचुए भूमि में गहरी सुरंग बनाते हैं (3 मीटर से अधिक) ये केचुएँ कृषि अपशिष्ट को कम व मिट्टी को अधिक खाते हैं। यह किस्म जल निकास में उपयोगी है।

3. डायोजिक – ये केंचुए 1–3 मीटर की गहराई पर रहते हैं एवं दोनों प्रजातियों की बीच की श्रेणी में आते हैं।

राजस्थान की परिस्थितियों से आइसीनिया फोईटिड़ा प्रजाति के केचुएँ सबसे उपयुक्त पाये गये हैं। इनकी लम्बाई 3–4 ईंच और वजन आधा से एक ग्राम तक होता है। ये लाल रंग के होते हैं जो 90 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ व 10 प्रतिशत मिट्टी खाते हैं तापमान, नमी एवं खाद्य पदार्थों की उपयुक्त परिस्थितियों में केंचुए चार सप्ताह में वयस्क होकर प्रजनन करने योग्य हो जाते हैं। एक केंचुआ एक सप्ताह में 2–3 कोकून देता है एवं एक कोकून में तीन से चार अण्डे होते हैं। इस तरह एक प्रजनक केंचुआ 6 माह में 250 केचुएँ पैदा कर सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि–

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करते है जो ऊँचा तथा छायादार हो। छाया नहीं होने की स्थिति में वर्मीबेड के ऊपर छप्पर डाल कर छाया करनी चाहिए, क्योंकि केंचुओं को अधिक प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। केंचुएँ अंधेरे में अधिक क्रियाशील रहते हैं। प्रजनन एवं खाद निर्माण क्रिया के लिए 30 प्रतिशत नमी एवं 25–30^{0} सेल्सियस तापमान

आवश्यक है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए बेड (क्यारी) की लम्बाई 40–50 फीट और चौड़ाई 3–4 फीट रखते है। लम्बाई व चौड़ाई को आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा कर सकते है, परन्तु वर्मीकम्पोस्ट तैयार होने पर उसको एकत्र करने में सुविधा के लिए चौड़ाई 4 फीट तक ही रखते है। आवश्यकतानुसार एक छप्पर के नीचे एक से अधिक क्यारियाँ बना सकते है।

क्यारी में मामूली सड़ा हुआ भूसा, तिनके, कड़बी, जूट आदि को सतह पर 3 इंच की मोटाई में तह लगाकर बिछौना बनाया जाता है। बिछावन को पानी से नम कर दिया जाता है। इस बिछावन में 2 इंच मोटाई की एक परत कम्पोस्ट या गोबर की बिछाई जाती है और पुनः इस परत को पानी से नम कर देते है। इस परत पर वर्मीकास्टिंग, जिसमें केंचुएँ व कोकून होते है, डाल दी जाती है। इस परत पर गोबर व मामूली सड़ा हुआ कृषि अपशिष्ट पदार्थ मिलाकर बिछा दिया जाता है। इस तरह परतों की कुल ऊंचाई लगभग डेढ़ फीट तक हो जाती है इसको टाट या घास–फूस से ढक दिया जाता है। इस ढेर पर समय समय पर पानी का छिड़काव करना चाहिए।

उचित परिस्थितियों में वर्मीकम्पोस्ट 60 दिन में बनकर तैयार हो जाती है। वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाने पर पानी का छिड़काव बन्द कर देते हैं जिससे केंचुए क्यारी में नीचे की परत में चले जाते हैं, इसके बाद उपर से वर्मीकम्पोस्ट को इकट्ठा कर लेते हैं।

चित्र–तैयार वर्मीकम्पोस्ट

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ–

1. वर्मीकम्पोस्ट देशी खाद की तुलना में अधिक श्रेष्ठ किस्म का होता है। इसमें गोबर की खाद की तुलना में प्रायः अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं तथा यह प्रयुक्त सामग्री पर भी निर्भर करता है।
2. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है अतः भूमि का कटाव रूकता है।
3. वर्मीकम्पोस्ट में एक्टीनोमाइसिटीज की मात्रा देशी खाद की तुलना में 8 गुणा अधिक होने से फसलों में रोग प्रतिरोधकता बढ़ती है।
4. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है।
5. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में खरपतवार व दीमक का प्रकोप कम होता है।
6. केंचुए, ऑक्जिन व साइटोकाइनिन नामक हार्मोन का स्राव करते हैं जो पौधों की वृद्धि एवं रोगरोधी क्षमता बढ़ातो हैं।
7. वर्मीकम्पोस्ट टिकाऊ खेती के लिए बहुत महत्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है।

प्रयोग विधि –

वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग विभिन्न फसलों में अलग–अलग मात्रा में किया जाता है। खेत की तैयारी के समय 2.5–3.0 टन प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग कर जुताई कर मिला लेते हैं। खाद्यान्न फसलों में 5–6 टन प्रति हेक्टर तथा सब्जियों में 10–12 टन प्रति हेक्टर वर्मीकम्पोस्ट प्रयोग किया जाता है, वर्मीकम्पोस्ट का रंग भूरा होने के कारण किसान इसका उपयोग बुआई के समय ऊरकर भी कर सकते हैं।

प्रयोग की मात्रा–

फसल के अनुसार केंचुआ खाद के प्रयोग की मात्रा 2–5 टन प्रति एकड़ निर्धारित की जा सकती है। सामान्यतया विभिन्न फसलों में इसे निम्न मात्रा में प्रयोग किया जाता हैं– धान्य फसलें–2 टन/एकड़, दालें–2 टन/एकड़, तिलहनी फसलें–3–5 टन/एकड़, मसालें की फसलें–4 टन/एकड़, शाकीय फसलें– 4–6 टन/एकड़, फलदार वृक्ष 2–3 किग्रा. प्रति वृक्ष, नकदी फसलें– 5 टन/एकड़, शोभाकारी पौधे 4 टन/एकड़, प्लांटेशन फसलें 5 किग्रा. प्रति पौधा।

स्रोत– राधा डी. काले, 2003

जैव उर्वरक (Biofertilizers)–

एकीकृत पोषण पद्धति में रासायनिक उर्वरकों एवं जीवांश खाद का प्रयोग ऐसे संतुलित अनुपात में किया जाता है जिससे कृषि उपज में वृद्धि के साथ–साथ भूमि और पर्यावरण पर रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सके। जैविक खेती में भी जैव उर्वरकों का काफी महत्व है, क्योंकि जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग न्यून अथवा वर्जित

है। ऐसी परिस्थिति में फसलोत्पादन में जैविक उर्वरक प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि जैविक उर्वरकों के उपयोग से हम प्राकृतिक संसाधनों से उचित जीवाणुओं के माध्यम से पौधों के लिए पोषक तत्व सुलभ करा सकते हैं।

जैव उर्वरक, वास्तव में प्राकृतिक उर्वरक हैं जिनमें एक या अधिक जीवाणुओं की मिश्रित संरचनाओं का समावेश होता है, जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने की क्षमता रखते हैं एवं अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाते हैं, जो पौधों को सुगमता से उपलब्ध होता है। ये जैव उर्वरक वृद्धिकारक हार्मोन्स की आपूर्ति करने में भी सक्षम होते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रकार (Types of biofertilizers)–

नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरक :

1. राइजोबियम (Rhizobium)– यह जीवाणु राइजोबिएसी कुल में आता है जो दलहनी फसलों की जडों पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों में रहता है। ये जीवाणु वायुमण्डल से नाइट्रोजन का अवशोषण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं जो अन्ततः पौधों को उपलब्ध होती है। यह बैक्टीरिया 50 से 100 कि. ग्रा. वायुमण्डलीय नाइट्रोजन प्रति हैक्टर तक स्थिरीकृत करने में सक्षम है। ये जैव उर्वरक मृदा में अम्लीयता व क्षारीयता के प्रभाव को कम करता है जिससे मृदा में पादप वृद्धि अच्छी होती है। इनके उपयोग से रबी, खरीफ, जायद की दलहनी फसलों का उत्पादन लम्बे समय तक अच्छा प्राप्त होता रहता है।

विभिन्न दलहनी फसलों के लिए भिन्न–भिन्न राइजोबियम की प्रजातियों के कल्चर काम में लिए जाते हैं जो इस प्रकार हैं– राइजोबियम मेलीलोटी (मेथी, रिजका, सेंजी), राइजोबियम ट्राईफोलाई (बरसीम), राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम (मटर, मसूर), राइजोबियम फेसियोलि (सेम), राइजोबियम जेपोनिकम (सोयाबीन), राइजोबियम लुपिनी (लुपिन) राइजोबियम स्पीशीज (मूँगफली, मूँग, उडद, चना, मोठ, अरहर)

2. एजोटोबेक्टर (Azotobacter)– यह जीवाणु एजेटोबेक्टिरिएसी कुल में आता है तथा स्वतन्त्र रूप से मृदा में रहते हैं और वायुमण्डल से नाइट्रोजन ग्रहण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं, इस जैव उर्वरक का प्रयोग गेहूँ, जौ, मक्का, सब्जियों आदि में किया जाता है। एजोटोबेक्टर के प्रयोग से 10–20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन की बचत की जा सकती है। ये वृद्धि को बढ़ाने वाले पदार्थ (growth promoting subtances) पैदा करते हैं जिससे बीजों के अंकुरण में वृद्धि होती है तथा पौधों की जड़ों का विकास होता है। एजोटोबेक्टर के प्रयोग से अनाज वाली फसलें जैसे–ज्वार, मक्का, सरसों तथा कपास की उपज में वृद्धि के साथ–साथ पौधों की संख्या में भी बढ़ोतरी होती है। ये जैव उर्वरक पॉलिसैकराइड उत्पन्न करते हैं जिससे मृदा संरचना में सुधार होता है।

3. एजोस्पिरिलम (Azospirillum)– यह जीवाणु Spirilliaceae कुल में पाया जाता है। यह जीवाणु राई, बाजरा तथा ज्वार के पौधों की जड़ों के साथ रहता हुआ पाया जाता है। ये वृद्धि नियामक पदार्थों को भी उत्सर्जित करता है। यह पर्णहरित की मात्रा को भी बढ़ाता है। इससे पौधों की वृद्धि भी अच्छी होती है और गहरा हरा रंग होता है। यह पौधों की जड़ों में माइकोराइजल इन्फेक्शन को भी बढ़ाता है।

यह जीवाणु भी मृदा में स्वतन्त्र रहकर वातावरणीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इस जैव उर्वरक का उपयोग धान, ज्वार, गन्ना, बाजरा, सब्जियों आदि में किया जाता है। यह वायुमण्डलीय नाइट्रोजन 15 से 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर स्थिरीकृत करते हैं। इनसे I.I.A. तथा GA 3 वृद्धि नियामक पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनसे अनाज वाली फसलों में 15 से 30 प्रतिशत उपज बढ़ती है तथा नकदी फसलों की 10 से 20 प्रतिशत उपज में बढ़ोतरी होती है।

नत्रजनी जैव उर्वरकों की उपयोग विधि–

नील हरित शैवाल तथा एजोला के अलावा सभी जैव उर्वरकों का निम्न प्रकार प्रयोग किया जाता है –

(i) बीज उपचार– इस विधि में 1.5–2.5 लीटर पानी को गर्म करके उसमें गुड़ मिलाकर घोल तैयार करते हैं। घोल के ठण्डा होने पर उसमें 600 ग्राम (3 पैकेट) कल्चर मिलाते हैं। एक हैक्टर के लिए उपयोग में लाये जाने वाले बीजों को फर्श या पॉलिथीन शीट पर फैला लेते हैं। बीजों के ऊपर कल्चर घोल को छिड़क कर भली–भाँति मिला लेते हैं जिससे बीजों पर जैव उर्वरक (कल्चर) के घोल की परत चढ़ जाये। साधारणतया 200 ग्राम राइजोबियम कल्चर 10 से 15 कि.ग्रा. दालों के बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है।

उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर बुआई कर लेते हैं। जैव उर्वरकों से बीज उपचार हेतु विभिन्न फसलों के लिए पानी की मात्रा निम्न प्रकार हैः– फसल– मूंग, उडद, चावल, (पानी 1 लीटर एवं गुड़ 250 ग्राम), अरहर (पानी 1.5 लीटर एवं गुड़ 300 ग्राम), चना, मूंगफली, सोयाबीन (पानी 2.5 लीटर एवं गुड़ 300 ग्राम) बीज उपचार विधि, जैव उर्वरक उपयोग की सबसे प्रभावी विधि है।

(ii) मृदा उपचार– इस विधि में 2–3 कि.ग्रा. कल्चर की मात्रा को 50 कि.ग्रा. छनी हुई गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई से पूर्व गीले खेत में छिड़क दिया जाता है।

(iii) पौध उपचार— इस विधि उन फसलों में काम लाई जाती है जिनकी पौध तैयार कर रोपण किया जाता है। एक बाल्टी में 10 लीटर पानी लेकर उसमें 4–5 पैकेट कल्चर के डालकर घोल तैयार करते हैं। इस घोल में पौधों की जड़ों को 10–20 मिनट तक डूबोकर रोपाई की जाती है। घोल की मात्रा आवश्यकतानुसार घटायी व बढ़ायी जा सकती हैं।

(iv) कंद उपचार — 1 कि.ग्रा. कल्चर का 40–50 लीटर पानी में घोल तैयार करते हैं। घोल में आलू, लहसुन, गन्ना, आदि के टुकड़ों को 10 मिनट तक डुबोकर बुवाई करते हैं।

4. नील हरित शैवाल (Blue green algae)–

नील हरित शैवाल को साइनोबैक्टीरिया (Cynobacteria) भी कहते हैं। यह शैवाल 15–53 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हैक्टर धान के खेत में यौगिकीकरण करता है (गोयल 1993, वैंकटरमन 1989)। यह 15–20 प्रतिशत धान की पैदावार को बढ़ाता है। यह पादप वृद्धि नियामक पदार्थ जैसे–इन्डोल एसिटिक एसिड, ऑक्जिन तथा जिब्रेलियन्स पैदा करता है। इसका उपयोग धान के खेतों में किया जाता है। यह प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपनी वृद्धि एवं विकास कर धान की फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है। इसकी कुछ मुख्य प्रजातियाँ है–एनाबिना, नोस्टॉक, साइटोनिया, आसीलेटोरिया आदि।

प्रयोग विधि–

इसका उपयोग धान की रोपाई के 7 दिन बाद करते हैं तथा जिस खेत मे इसका उपचार करते हैं उसमें पानी स्थिर एवं 8–10 से.मी. हमेशा भरा रहना चाहिए। खेत में 8–12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से नील हरित शैवाल का छिड़काव करते है। कल्चर डालने के बाद 4–5 दिनों तक पानी स्थिर रहना चाहिए।

5. एजोला (Azolla)–

एजोला का का खाद के रूप में प्रयोग वियतनाम तथा चीन में कई सदियों पूर्व से होता आ रहा है। भारत तथा अन्य देशों में इसका प्रयोग अभी हाल ही में शुरू हुआ है। एजोला एक जलीय फर्न है जो एजोलेसी (Azollaceae) कुल में आता है। भारत में एजोला पिन्नेटा (Azolla pinnata) पाया जाता है।

यह अपने भीतर नील हरित शैवाल (Anabaena Azollae) को समेटे रखने वाला जलीय पौधा है, जो कि प्रायः झीलो, तालाबों, नहरों, तथा कहीं–कहीं धान के खेत में पानी की सतह पर तैरता हुआ मिलता है। एजोला एनाबीना एजोली के साथ सहजीवन (Symbiosis) क्रिया के द्वारा धान के खेतों में नत्रजन स्थिरीकरण करता है। तमिलनाडु में एजोला माइक्रोफाइला (Azolla microphylla) जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। एजोला धान की फसल में लगभग 40–50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रति फसल प्रदान करता है। एजोला को धान की फसल में हरी खाद के रूप में देने से धान की उपज 3–38 प्रतिशत बढ़ जाती है (सिंह 1997)।

एजोला प्रतिदिन 1.0–1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक नाइट्रोजन जमा करने की क्षमता रखता है। 20–25 दिन के भीतर इससे प्रति हैक्टर औसतन 20–40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त हो जाता है। एजोला सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा 150 से 200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन स्थिरीकृत करता है।

एजोला प्रयोग विधि–

एजोला का उपयोग धान के खेत में रोपाई के पहले हरी खाद के रूप में या रोपाई के बाद धान के साथ इसका संवर्धन किया जाता है। प्रथम विधि में इसका प्रयोग केवल उन्हीं क्षैत्रों में सम्भव है जहॉ रोपाई के पहले पर्याप्त पानी उपलब्ध हो। खेत को तैयार कर छोटी–छोटी क्यारियों में बॉंट कर 5–10 से.मी. भर देते हैं। क्यारियों में 1.0–2.0 टन प्रति हैक्टर की दर से एजोला डाल देते हैं। 10 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हैक्टर की दर से तीन बराबर भागों में खेत में डालें। 15–20 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाने पर खेत से पानी निकाल कर हल चलाकर एजोला को मिट्टी में मिला दें, बाद में धान की रोपाई कर दें।

धान के साथ एजोला प्रयोग के लिए 0.5–1.0 टन एजोला प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के एक सप्ताह बाद खेत में डालें। 20–25 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाती है इसको मिट्टी में मिला दें। मिट्टी में नहीं मिलाने पर एजोला अपने आप सड़ जाता है और फसल को पर्याप्त लाभ देता है।

फॉस्फोरस विलेय जैव उर्वरक (Phosphate solubilising bio fertilizers)– इस जैव उर्वरक में बैक्टीरिया, फफूँद, व एक्टीनोमाइसीटीज की कोशिकाऐं जीवित अवस्था में होती हैं जो मृदा में अघुलनशीन फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने का कार्य करती हैं। ये पौधों की वृद्धि हेतु हारमोन्स, विटामिन आदि भी प्रदान करते हैं। फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने वाले सूक्ष्म जीव जिनमें बैक्टीरिया की प्रजाति बैसिलस तथा स्यूडोमोनाज, कवक की प्रजाति एस्परजीलस तथा पैनिसिलियम मुख्य हैं। बैक्टीरिया एवं फन्जाई की निम्न प्रजातियाँ बेसिलस सर्कुलॉन्स, बेसिलस पोलीमिक्सा, सुडोमोनास स्ट्राइटा आदि काफी सक्रियता से मृदा में पाए जाने वाले अप्राप्य फॉस्फोरस को घुलनशील करके प्राप्य रूप में परिवर्तित करते हैं जिससे पौधा आसानी से फॉस्फोरस को ग्रहण कर लेता है।

प्रयोग विधि–

फॉस्फोरस घोलक बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) / पी.एस.एम. (Phosphorus solubilizing micro-organisms) कल्चर का उपयोग भी एजोटोबेक्टर या राइजोबियम की तरह ही बीज उपचार, भूमि उपचार व पौध उपचार के रूप में किया जाता है, जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

माइकोराइजा (Mycorrhizae)–

यह एक विशेष प्रकार का कवक होता है जो बहुशाखीय लम्बे तंतुओं से बना होता है। पौधों व फसलों की जडों में इसके तंतु प्रवेश कर जाते हैं। तंतुओं का वह भाग जो जड़ों के बाहर रहता है मिट्टी से लगातार फॉस्फोरस अवशोषित करता रहता है।

यह फॉस्फोरस, तंतुओं के अन्दर गति कर पौधों की जड़ क्षेत्र के अन्दर पहुँच जाता है। कवक व पौधों की जड़ों के बीच सह–जीविता होती है जिससे कवक मृदा से जल एवं खनिज लवणों को अवशोषित कर पौधों को प्रदान करता है तथा पौधे कवक को कार्बनिक भोज्य पदार्थ प्रदान करते हैं।

वेसिकूलर आरबसक्यूलर माइकोराइजा (Vesicular arbsuclar mycorrhiza)

इस माइकोराइजा में कवक पौधों की जड़ों में संक्रमण करके पौधों की जड़ों की कोशिकाओं के अन्दर पहुंच जाते हैं तथा वहाँ पर कवक एक विशेष प्रकार की रचना बेसिल्लस और अरबसल्लस का निर्माण करता है, बेसिल्लस एक गुब्बारे के आकार की रचना होती है जो कि अरबसल्लस के द्वारा जुड़ी रहती है तथा इनके कवक सूत्र मृदा में स्पोरोकारपस में र्स्पोस भरे रहते हैं जिनके फटने से स्पोर्स मृदा में फैल जाते हैं तथा अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर यह दूसरे पौधे (host) में संक्रमण करते हैं। इस माइकोराइजा की पाँच प्रमुख प्रजातियाँ होती हैं– 1. ग्लोमस, जिगस्पोरउ, एकुलोस्पोरा, एण्डोगन और स्किलिरोसिस्टस ज्ञात है जिनमें से ग्लोमस प्रजाति प्रमुख हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में वाम फंन्जाई का उत्पाद 'Nutrink' नामक जैव उर्वरक तैयार किया गया है जिसके एक पैकिट का मूल्य 20 रु. प्रति कि.ग्रा. है। एक एकड़ भूमि को उपचारित करने के लिए 3–5 कि.ग्रा. मात्रा चाहिए।

माइकोराइजा के लाभ–

1. यह जड़ तंत्र के बाहरी भाग का विस्तार करता है जिससे कि कवक सूत्र अधिक गहराई में जाकर पोषक तत्वों (फॉस्फोरस, नत्रजन, पोटैशियम, जिंक तथा गंधक) को मृदा में अवशोषित करके उनका संचयन कवक सूत्रों के मेन्टल / अरबसटलस में करते हैं।
2. यह कुछ वृद्धि कारकों ऑक्जीन, साइटोकाइनिन एवं जिबरालिन्स तथा विटामिन का स्राव करते हैं जिससे पौधों की वृद्धि होती है।
3. दलहनी फसलों में माइकोराइजा को राइजोबियम के साथ निवेशन करने से फॉस्फोरस के साथ–साथ नत्रजन की मात्रा में भी वृद्धि होती है।
4. माइकोराइजा वृक्ष दूसरे वृक्षों में माइकाराइजल सहजीविता स्थापित कर लेते हैं तथा दूसरे वृक्षों में पोषक तत्वों की कमी होने पर यह उस वृक्ष में पोषक तत्वों का स्थानान्तरण करते हैं।
5. माइकोराइजा के कवक सूत्र मृदा में गहराई तक फैल जाते हैं तथा सूखने की स्थिति में पौधों के लिए पानी की पूर्ति करते हैं।

जैव उर्वरकों के लाभ–

जैव उर्वरकों के उपयोग से होने वाले लाभ निम्नानुसार है–

1. जैव उर्वरक पौधों को नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की आपूर्ति करते हैं।
2. ये पौषक तत्वों के सस्ते स्रोत हैं।
3. कुछ जैव उर्वरक जैसे एजोटोबेक्टर, एजोला व नीलहरित शैवाल हार्मोन्स, विटामिन आदि का स्राव भी करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
4. इनके उपयोग से फसलों की उपज में 10–20 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।
5. कुछ जैव उर्वरक एन्टीबायोटिक उत्पन्न करते हैं जिससे मृदा जनित रोगों का प्रभाव कम होता है।
6. इनके उपयोग से मृदा की भौतिक अवस्था में सुधार होता है।
7. नील हरित शैवाल व एजोला नाइट्रोजन के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा, तांबा, मैगनीज, जस्ता आदि उपलब्ध कराते हैं।

सारणी– विभिन्न जैव उर्वरकों की नत्रजन स्थिर/फॉस्फोरस घुलनशील बनाने की क्षमता

जैव उर्वरकों का नाम		नाइट्रोजन स्थिर क्षमता (कि.ग्रा./है./वर्ष)	फसलें	उत्पादन वृद्धि (प्रतिशत में)
अ.	**नत्रजनीय जैव उर्वरक**			
1.	राइजोबियम कल्चर	250–300	दलहनी फसलें	0–60
2.	एजोटोबैक्टर	10–60	धान्य फसलें	5–30
3.	एजोस्पीरिलम	0–40	ज्वार, धान आदि	0–20
4.	नील हरित शैवाल	25–30	धान	0–15
5.	एजोला	25–30	धान	0–15
ब.	**फॉस्फोरस जैव उर्वरक**			
1.	पी.एस.बी. कल्चर	20–25	सभी फसलें	20–30
2.	माइकोराइजा (वाम)	15–20	मक्का, धान, गेंहू अलसी, प्याज,	20–30

सारणी– विभिन्न दलहनी फसलों की नत्रजन स्थिर करने की क्षमता

	फसल	नाइट्रोजन स्थिर क्षमता (कि.ग्रा./है.)
1.	लूसर्न (Alfalfa)	100–300
2.	तिपतिया (Clover)	100–150
3.	मोठ (Cluster bean)	37–196
4.	मटर (Peas)	46
5.	मसूर (Lentil)	35–100
6.	सौंफ (Fenugreek)	44
7.	सोयाबीन (Soyabean)	49–130
8.	लोबिया (Cowpea)	80–125
9.	अरहर (Pigeonpea)	68–200
10.	उड़द (Blackgram)	50–55
11.	चना (Chickpea)	85–110
12.	सेम (Commanbean)	3–57
13.	मूंगफली (Groundnut)	50–206
14.	मूंग (Greengram)	50–66

Source : Wani & Lea (1992), subba Rao et al (1990)

जैव उर्वरकों के प्रयोग करने में सावधानियाँ :–

1. जीवाणु कल्चर किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से ही खरीदें तथा पैकेट पर लिखी अन्तिम तिथि व फसल का नाम अवश्य देख लें।
2. कल्चर का भण्डारण ठंडे स्थान पर ही करें।
3. पैकेट पर लिखे दिशा–निर्देशों का पालन करें।
4. घोल बनाने के लिए पानी को र्निजर्मीकृत (Sterilized) किया जाना आवश्यक होता है। ऐसा न करने से पानी में स्थित जीवाणु, कल्चर से जीवाणुओं को हानि पहुंचा सकते हैं।
5. कल्चर को रासायनिक खाद तथा कृषि रसायनों के साथ न मिलाये।
6. यदि बीज को किसी पारायुक्त रसायन से उपचारित करना हो तो पहले रसायन का प्रयोग कर लें उसके पश्चात कल्चर की दोगुनी मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।
7. यदि मिट्टी अम्लीय हो तो कल्चर से उपचारित बीजों पर पहले चूने की और यदि क्षारीय भूमि है तो जिप्सम की परत चढ़ा कर बुआई करें।
8. पैकेट को उपचारित करते समय ही खोलना चाहिए तथा उपचारित बीजों को तुरन्त बो दें, धूप में ना रखें।
9. उपचारित बीज तथा मृदा रासायनिक उर्वरक सीधे सम्पर्क में न आने पायें। अतः रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बुवाई के समय न किया जाये।
10. बुवाई के उपरान्त बचे हुए बीजों को खाने के उपयोग में

हरी खाद के लिए प्रयोग होने वाली फसलों को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जाता हैं–

(1) दलहनी फसलें (Leguminous Crops)– सनई, ढैंचा, मूँग, उडद, ग्वार, लोबिया, नील, बरसीम, सैंजी, सोयाबीन, रिजका आदि।

(2) अदलहनी फसलें (Non-leguminous Crops)– राई, जौ, जई, तोरिया, सरसों, मक्का, ज्वार, सूरजमुखी आदि।

हरी खाद की फसल के आवश्यक गुण (Desirable characteristics of green manuring crop)–

(1) फसल खूब बढ़ने वाली तथा खूब पत्तियों वाली तथा शाखादार हो, ताकि प्रति हैक्टर अधिक से अधिक मात्रा में मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिलाया जा सके। फसल के वनस्पति भाग मुलायम हो ताकि वे आसनी से सड़ सके।

(2) फसल फलीदार होनी चाहिए, क्योंकि इन पौधों की जड़ों में ग्रन्थियाँ होती हैं, जिनमें रहने वाले बैक्टीरिया वायुमण्डल की स्वतंत्र नाइट्रोजन को मृदा में अधिक मात्रा में स्थिरीकरण (fixation) करते हैं।

(3) इनका बीज सस्ता हो और आसानी से उपलब्ध हो सके।

(4) फसलों की जड़े नीचे गहरी जाए जिससे मिट्टी भुरभुरी बन सके और पोषक तत्वों को अधोमृदा (Subsoil) से निकाल कर ऊपर ले आए।

(5) हरी खाद ऐसी हो जो कि कम उपजाऊ मृदा पर भी सफलता पूर्वक उगायी जा सके तथा जल की आवश्यकता भी कम हो।

(6) फसल को कीट न लगें और उसमें रोगों के आक्रमण न होते हों तथा विषम जलवायु सहन कर सके।

(7) फसल चक्र में उसका उचित स्थान होना चाहिए। फसल की तैयारी में अधिक समय न लगता हो, उसके अधिक प्रबंध तथा देख–रेख करने की आवश्यकता न पड़ती हो।

(8) मिट्टी में उपयोगी अवशेष छोड़े।

खली की खाद (Oilcake Manure)–

तिलहनों से तेल निकालने के बाद जो अवशिष्ट पदार्थ बचा रह जाता है, उसे खली (Oilcake) कहते हैं। जब इसे खेत में खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है तो इसे खली की खाद कहते हैं। खली की खाद सान्द्र कार्बनिक खादों के वर्ग में आती हैं।

खलियों में पोषक तत्व–

खलियों में गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट की तुलना में नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पायी जाती हैं। इसके साथ ही फास्फोरस और पोटाश भी पाया जाता है।

खलियों के प्रकार (Types of oilcakes)–

खलियाँ दो प्रकार की होती हैं–(1) खाद्य खलियाँ व (2) अखाद्य खलियाँ।

(1) खाद्य खलियाँ (Edible Cakes)– ये वे खलियाँ हैं जिन्हें पशुओं को खिलाने के काम में लाया जाता है। जैसे–बिनौला, मूँगफली, सरसों, तारामीरा, तिल, नारियल आदि।

(2) अखाद्य खलियाँ (Non-edible Cakes)– ये वे खलियाँ हैं जिन्हें पशु नहीं खाते तथा इनको खेतों में खाद्य के रूप में काम में लिया जाता है। जैसे–अरण्डी, महुआ, नीम, करंज आदि।

खलियों की प्रयोग विधि –

खलियों को खेत में डालने के बाद उनके अपघटन के लिए मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी होना अतिआवश्यक है। अतः इन्हें सिंचित अर्थात् पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है। खलियों का बुवाई पूर्व कूट–पीसकर चूर्ण बना लेना चाहिए। उसके बाद उपर्युक्त समय पर एक बार में एकसार बिखेर कर जुताई कर खेत में मिला देनी चाहिए। खलियों में जितनी अधिक मात्रा में तेल होगा उतना ही उन मृदा में अपघटन देर से होगा। खलियों का उपयोग बुवाई पूर्व और पश्चात् दोनों ही तरह से किया जा सकता है।

(1) बुवाई पूर्व खलियों का प्रयोग–

(अ) महुआ की खल के अतिरिक्त सभी खलियों का चूर्ण बुवाई के 10–15 दिन पूर्व खेत में प्रयोग करना चाहिए।

(ब) महुआ की खल का प्रयोग बुवाई के लगभग दो माह पूर्व करना चाहिए। इसमें सेपोनिक नामक रसायन पाया जाता है जिसकी उपस्थिति के कारण धान की फसल के लिए सर्वोत्तम खली है।

(स) खलियों को खेत में बिखेरकर हल्की जुताई कर मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

(2) बुवाई पश्चात् प्रयोग विधि–

(अ) अंकुरण पश्चात् पौधों के जमने के बाद पौधों के पास बारीक पिसी हुई खली के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

(ब) कन्दमूल वाली फसलों में मिट्टी चढ़ाते समय खलों का प्रयोग करना चाहिए।

विभिन्न खलियों की पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

	खली का नाम	नाइट्रोजन	फास्फोरिक अम्ल	पोटाश
A.	**न खाने योग्य खलियाँ**			
1.	अरण्डी की खली	4.37	1.85	1.39
2.	बिनौले (बिना छिले) की खली	3.99	1.89	1.62
3.	करंज की खली	3.97	0.94	1.27
4.	महुआ की खली	2.51	0.80	1.85
5.	नीम की खली	5.22	1.08	1.48
6.	कुसुम की खली (बिना छिली)	4.92	1.44	1.23
7.	अंडों की खली	3.63	1.52	2.05
B.	**खाने योग्य खली**			
1.	नारियल की खली	3.02	1.90	1.77
2.	छिले बिनौले की खली	6.41	2.89	2.17
3.	मूँगफली की खली	7.29	1.53	1.33
4.	अलसी की खली	5.56	1.44	1.28
5.	जामुन की खली	4.95	1.65	1.90
6.	राम तिल की खली	4.73	1.83	1.31
7.	सरसों की खली	5.21	1.84	1.19
8.	कुसुम की खली (छिली हुई)	7.88	2.20	1.92
9.	तिल की खली	6.22	2.09	1.26

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरक हैं– राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पिरिलम, नील हरित शैवाल, एजोला, आदि तथा फॉस्फोरस जैव उर्वरक– पी.एस.एम./पी.एस.बी. व माइकोराइजा हैं।
2. राइजोबियम का उपयोग दलहनी फसलों में किया जाता है।
3. नील हरित शैवाल व एजोला का उपयोग धान में किया जाता है।
4. एजोटोबेक्टर व एजोस्पिरिलम जैव उर्वरकों का प्रयोग अदलहनी फसलों में किया जाता है।
5. पी.एस.एम./पी.एस.बी. का प्रयोग सभी प्रकार की फसलों व सब्जियों में किया जाता है।
6. जैव उर्वरकों का प्रयोग बीज उपचार, मृदा उपचार, पौध उपचार व कन्द उपचार के लिए किया जाता है।
7. पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ती के लिए व सभी कार्बनिक पदार्थ जो भूमि में मिलाये जाने पर, भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करते हैं, खाद कहलाते हैं।
8. जैविक खादों के उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक अवस्था में सुधार होता है।
9. प्रमुख जैविक खाद हैं– गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, पोल्ट्री खाद, मछली की खाद, हरी खाद, खली की खाद, कड़वी की खाद आदि।
10. जैविक खेती में फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति जैविक/कार्बनिक खाद से की जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. चने के बीजों को कौनसे जैव उर्वरकों से उपचारित करते है ?

   (अ) राइजोबियम (ब) एजोटोबेक्टर

   (स) एजोला (द) एजोस्पिरिलम

2. एजोला का उपयोग कौनसी फसल में करते है ?

(अ) गेंहूँ (ब) जौ

(स) मक्का (द) धान

3. जैविक खाद भूमि की कौनसी अवस्था पर प्रभाव डालता है ?

   (अ) जैविक (ब) रासायनिक

   (स) भौतिक (द) उपरोक्त सभी

4. फॉस्फेट विलेय बेक्टीरिया है–

   (अ) राइजोबियम (ब) एजोटोबैक्टर

   (स) स्यूडोमोनास (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. मक्का के लिए कौनसा नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरक काम में लेते है ?
2. धान के खेत में एजोला की कितनी मात्रा प्रयोग करते हैं ?
3. जैविक खाद भूमि की संरचना में कैसे सुधार करती हैं ?
4. खाद की परिभाषा लिखिए।
5. वर्मीकम्पोस्ट बनाने में केंचुऐ की कौनसी प्रजाति सबसे अधिक प्रचलित है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. जैव उर्वरकों के लाभ बताइये ?
2. माइकोराइजा क्या है ?
3. एजोला की उपयोग विधि लिखिये।
4. वर्मीकल्चर क्या है ?
5. वर्मीकास्ट क्या है ?
6. जैविक खाद पर टिप्पणी लिखिये।
7. वर्मीकम्पोस्ट के लाभ लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. विभिन्न जैव उर्वरकों के प्रकार एवं उनकी प्रयोग विधि पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।
2. वर्मीकम्पोस्ट क्या है ?वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि का वर्णन करो।
3. गोबर की खाद बनाने की ट्रेंच विधि पर विस्तार से प्रकाश डालें।
4. नाडेप विधि से कम्पोस्ट बनाने की विधि का सविस्तार वर्णन करो।

उत्तरमाला –

1. (अ) 2. (द) 3. (द) 4. (द)